REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

विश्वभाषा और हिंदी

डॉ. गोरख थोरात
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सर परशुरामभाऊ महाविद्यालय, पुणे.

बीसवीं शती के अंतिम दशक से भूमंडलीकरण की जोरदार चर्चा शुरू हुई और साथ ही हिंदी के विश्वभाषा बनने की भी। क्योंकि इस दशक में भारत ने उदार आर्थिक नीति को अपनाकर सारे संसार के लिए अपने द्वार खोल दिए। भारत का वैश्विक स्तर पर खुला व्यापार प्रारंभ हुआ और भारत विश्व का एक अहम हिस्सा बन गया। इसी के साथ भारतीय लोगों का संसार के अन्यान्य देशों के लोगों से संपर्क स्थापित हुआ, जिससे हिंदी के विश्वभर में पहुँची और हम हिंदी को विश्वभाषा मानने लगे।

विश्वभाषा के रूप में हिंदी का विचार करने से पूर्व भारत में उसकी स्थिति पर दृष्टिक्षेप करना अप्रासंगिक न होगा। भारतीय संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है और अंग्रेजी को सहराजभाषा का। हिंदी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं, परंतु संवैधानिक रूप से वह राष्ट्रभाषा नहीं है। हिंदी राष्ट्रभाषा क्यों नहीं है, इसपर अनेक विद्वान आक्रोश प्रकट करते हुए तत्कालीन सरकार को इसके लिए जिम्मेदार मानते हैं। भारत की राष्ट्रभाषा के मसले पर हमारे विद्वानों को अक्सर टर्की के तानाशाह केमाल पाशा की याद आती है, जिसने अपने एक आदेश से अपने देश का भाषायी मसला निपटा दिया था। परंतु केमाल पाशा से हमारे राजनेताओं की तुलना करते समय हम यह भूल जाते हैं कि केमाल पाशा एक तानाशाह था, और उसका देश सजातीय भाषा समूह का देश था। इसके विपरीत भारत एक लोकतांत्रिक देश है, जहाँ सैकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं। भाषा, धर्म, संस्कृति, नस्ल आदि की दृष्टि से इतने वैविध्य से भरा यह दुनिया का अकेला देश है। अतः यहाँ भाषा का मसला इतनी आसानी से, तानाशाही तरीके से हल होनेवाला नहीं है। इसका तो बस विवेकसम्मत हल ही निकाला जा सकता था। अतः यदि तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और प्रादेशिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में गंभीरता से विचार किया जाए तो पता चलेगा कि उस समय जो निर्णय लिया गया, उससे बढ़कर दूसरा उपाय था ही नहीं। वरना भाषा के नाम पर देश के टुकड़े करने की नौबत आती।

परंतु दुर्भाग्य से इस समाधान का एक दुष्परिणाम हुआ। संविधान ने हिंदी को मुख्य राजभाषा का और अंग्रेजी को सहराजभाषा का दर्जा दिया था, परंतु व्यवहार में हमने अंग्रेजी को मुख्य राजभाषा बना दिया और हिंदी को उसकी अनुगामिनी या सहराजभाषा। परंतु इसमें सोचनेवाली बात यह है कि इसके लिए उत्तरदायी कौन है? इसका एक ही उत्तर है - भारतीय मानसिकता। इसी मानसिकता के तहत हम उपनिवेशवादी राजतंत्र की प्रतीक अंग्रेजी को सिरआँखों पर बिठाए रखते हैं। मैं यहाँ हिंदी अध्यापकों की बात नहीं कर रहा हूँ, बल्कि उनकी बात कर रहा हूँ जिनकी हिंदी अपनी भाषा है और जो अंग्रेजी का बस कामचलाऊ ज्ञान रखते हैं। फिर कामकाज में हिंदी के बजाय अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। चाहे इसमें वे परंपरा और हिंदी पारिभाषिक शब्दावली की अनुपलब्धता की दुहाई देते हों, परंतु असलियत यही है कि इसी अंग्रेजी मानसिकता के कारण हिंदी का प्रयोग करनेवालों को पिछड़ा हुआ माना जाता है। इसी मानसिकता के कारण हमारी उच्च शिक्षा, विज्ञान, संचार, वाणिज्य का माध्यम अंग्रेजी बनी हुई है। जब तक हम इस मानसिकता से बाहर नहीं निकलते, तब तक हिंदी को विश्वभाषा के रूप में गौरवान्वित करना दूर की कौड़ी है।

कोई भी भाषा विश्वभाषा बनती है, उसकी उपयोगिता, सर्वसुलभता तथा ज्ञान-संपन्नता के कारण। विश्वभाषा के तौर पर प्रतिद्वंद्वी अंग्रेजी को अक्सर हम भलाबुरा कहते हैं और उसपर अभियोग लगाते हैं कि उसके कारण हिंदी पिछड़ रही है। (भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाएँ भी हिंदी पर यही अभियोग लगाती हैं।) परंतु वास्तव में हिंदी अंग्रेजी के कारण नहीं, बल्कि उससे यानी अंग्रेजी से होड़ न लेने के कारण पिछड़ रही है। कहा जाता है कि दुनिया के किसी भी कोने में किसी भी भाषा में कोई नया अनुसंधान या नई उपलब्धि प्राप्त होती है तो चंद दिनों के अंदर वह अनुवाद के जरिए अंग्रेजी में उपलब्ध हो जाती है। इसी कारण अंग्रेजी आज के इंटरनेट के मायाजाल पर पूर्ण रूप से हावी है, और विश्व का अधिकांश ज्ञान उसमें उपलब्ध होने के कारण वह लोगों की आवश्यकता बन गई है। मुद्रित सामग्री के रूप में भी ज्ञान-विज्ञान की यही स्थिति है। हिंदी में इस दृष्टि से बहुत ज्यादा प्रयास नहीं हो रहे हैं। जो प्रयास हो रहे हैं, वे ऊँट के मुँह में जीरे के बराबर भी नहीं है, और उसी पर हम अपनी पीठ ठोंक रहे हैं। क्योंकि इंटरनेट की वीकिपीडिया वेबसाईट पर दुनियाभर का ज्ञान उपलब्ध है। परंतु वह है अंग्रेजी भाषा में। वहाँ हिंदी भाषा का भी विकल्प है, परंतु उसमें जाएँ तो सूचना मिलती है कि कृपया इस अंश को संपादित या अनुवादित करें। इस तरह अंग्रेजी में उपलब्ध इस ज्ञान का एक प्रतिशत भी हिंदी में उपलब्ध नहीं है। क्योंकि हम दुनियाभर के ज्ञान को उद्देश्यपूर्वक अपनी भाषा में अनूदित नहीं कर रहे हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी साहित्य की किसी भी रचना को इंटरनेट पर ढूँढे तो वह रचना हमें पीडीएफ रूप में, श्रव्य रूप में और दृश्य-श्रव्य यानी फिल्म अथवा नाट्य के रूप में भी उपलब्ध हो जाती है। इसके जवाब में जब हम हिंदी रचनाओं को वहाँ खोजने लगते हैं, तब अधिकांश रचनाएँ हमें नदारद ही मिलती हैं। यदि कोई रचना बहुत प्रसिद्ध रही तो उसका पीडीएफ रूप हमें उपलब्ध हो जाता है। परंतु श्रव्य और दृश्य-श्रव्य रूप लगभग न के बराबर होते हैं। हाँ, प्रेमचंद जैसे रचनाकारों की रचनाओं पर कुछ फिल्में जरूर बनी हैं अथवा आजकल

के लाइव प्रोग्राम जरूर यूटयूब पर नजर आते हैं, परंतु बाकी साहित्य वहाँ दिखाई नहीं देता। साथ ही हिंदी के किसी विषय पर अथवा रचना पर आलोचनात्मक सामग्री या व्याख्यान भी वहाँ नजर नहीं आते। इसका एक ही कारण है, हमारी उदासीनता। भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार में समर्पित कई संस्थाएँ हैं, जिन्हें सरकार की ओर से करोड़ों रुपए अनुदान के रूप में प्राप्त होते हैं। परंतु इसमें से किसी की भी पहल इस दिशा में नजर नहीं आती है।

अभी पिछले वर्ष मैं दिल्ली गया था। वहाँ मैंने कई प्रमुख प्रकाशकों से बात की। मुझे यह जानकर हैरत हुई कि हिंदी में इनसाइक्लोपीडिया की तर्ज पर बना एक भी विश्वकोश नहीं है जबकि भारत की कई प्रादेशिक भाषाओं में ये विश्वकोश उपलब्ध हैं। दरअसल, संविधान के अनुच्छेद 351 के तहत हिंदी के प्रचार प्रसार और उसके विकास का दायित्त्व केंद्र सरकार को सौंपा गया है, जिसके लिए केंद्र सरकार अरबों-खरबों रुपए खर्च करती है, केंद्रीय हिंदी निदेशालय जैसी दर्जनों संस्थाएँ हिंदी के विकास का दावा करती है, परंतु हिंदी का कोई भी स्तरीय विश्वकोश नहीं बना सकती, जबकि मराठी जैसी प्रादेशिक भाषा में यह उपलब्ध है और बहुत बढ़िया रूप में उपलब्ध है। हिंदी में जो विश्वकोश उपलब्ध है, वह नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा बना पचास साल पुराना है। उसमें कोई भी जानकारी परिपूर्ण और अद्यतन नहीं है। यदि हम अपनी भाषा में एक अद्यतन विश्वकोश नहीं बना सकते हैं, तो जरा सोचिए हमें कितना हक बनता है अंग्रेजी को भला-बुरा कहने का?

एक विश्वभाषा के रूप में हम जब भी हिंदी का गौरव करते हैं, तब भारत से विदेशों में जा बसे भारतीय मूल के लोगों की बात करते हैं कि हमारी हिंदी फलाँ-फलाँ देशों में पहुँच चुकी है, दुनिया में बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से दूसरे नंबर पर है आदि आदि। भाषा का प्रयोग करनेवालों के पैमाने की दृष्टि से अवश्य यह गर्व की बात है। परंतु यह तो सोचिए कि हिंदी का प्रयोग करनेवाले लोग कौन है? हिंदी जिनकी मातृभाषा है, वे तो उसका प्रयोग करेंगे ही, चाहे वे भारत में हों या बाहर। असल सवाल यह है कि जिस तरह भारत के लोग अंग्रेजी, जापानी, रूसी, चीनी, फ्रेंच, स्पेनिश आदि भाषाएँ सीख रहे हैं, दुनियाभर में कितने अभारतीय लोग हिंदी सीख रहे हैं? इससे यह बात स्पष्ट होती है कि विश्वभाषा बनने का गौरव उसी भाषा को प्राप्त हो सकता है, जो रोजगार दिलानेवाली भाषा होती है। जो विजेताओं की भाषा होती है और हमने अभी अपने देश को उतने उन्नत रूप तक नहीं पहुँचाया है, जिससे वह बाहरी देशों के लोगों को रोजगार दे सके और वे लोग उनकी आवश्यकता के चलते हिंदी सीख सकें। इस संदर्भ यह मुद्दा अवश्य विचारणीय है कि आज भारत दुनिया का सबसे बड़ा बाजार है, जहाँ अपना उत्पादन बेचने के लिए दुनियाभर के उत्पादक मचलते रहते हैं। इसके लिए विज्ञापन के रूप में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। परंतु सवाल यह है कि ये विज्ञापन चलाए कहाँ जा रहे हैं? भारत में हिंदी के विज्ञापन चलाने से हिंदी का क्या भला होगा? यह तो अंग्रेजों के जमानेवाली वही बात हो गई कि कच्चा माल हमारा, उसका पक्का माल बनानेवाले अंग्रेज और फिर उसके खरीदार हम हीं। आज भी कुछ ऐसा ही हो रहा है। हमारी भाषा को विज्ञापनों के नाम पर

महिमामंडित करके व्यापार के बहाने हमें लूटा जा रहा है। अतः मेरा मानना है कि देश का विकास और किसी भाषा का विश्वभाषा बनना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं हिंदी भाषा विश्वभाषा बनने की सामर्थ्य रखती है। परंतु हमारी ओर से उसे मजबूती नहीं मिल रही है। हम तो बस विश्व हिंदी सम्मेलन और यूनो में हिंदी भाषण पर ही अपनी पीठ ठोंक रहे हैं। इन बातों का भी अपने-अपने स्थान पर महत्त्व है, परंतु हमारा असली काम यह है कि भूमंडलीकरण के दौर में जब सारे संसार में एक-दूसरे के प्रति प्रतियोगिता चल रही है, उसमें हम हिंदी को पिछड़ने न दें। इसके लिए दुनियाभर का विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान एवं साहित्य हिंदी में अनूदित होने की आवश्यकता है। साथ ही हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के उच्च कोटि के दार्शनिक और साहित्यिक ग्रंथों को भी अंग्रेजी अनुवाद के जरिए दुनिया के सामने लाने की आवश्यकता है। बात में थोड़ा विरोधाभास लग सकता है कि अंग्रेजी अनुवाद से कैसे हिंदी का क्या भला होगा? परंतु जब ये ग्रंथ अंग्रेजी में जाएँगे, तभी तो दुनिया भारत की उपलब्धियों से परिचित होगी। इसी प्रकार सूचना संचार क्रांति के रूप में भी बहुत सुनहरा अवसर हमारे सामने है। इसमें हिंदी की जितनी अधिक शिरकत होगी, उतनी ही विश्वभाषा के रूप में अपना गौरव वृद्धिंगत करेगी।